# प्रस्तावना

यद्यपि ऋषि दयानन्द में आरम्भ से ही महत्ता के सभी अंकुर उपस्थित थे तथापि उनके प्ररोहण में जितनी सहायता उनको गुरु विरजानन्द जी से मिली उतनी अन्यत्र कहीं प्राप्त नहीं हुई। गुरुवर की मृत्यु पर ऋषि दयानन्द ने सत्य ही कहा था कि आज विद्या का सूर्य अस्त हो गया। ऋषि दयानन्द के हृदय को बचपन से ही शंकाओं ने विक्षिप्त कर दिया था, और उन्हीं शंकाओं से प्रेरित होकर वह सत्य की खोज में घर से निकल पड़े थे। परन्तु उनके समाधान की सामग्री एक मात्र गुरु विरजानन्द ही थे। उनके केवल एक सूत्र ने अर्थात् "ऋषि प्रणीत ग्रन्थों को पढ़ो, मनुष्य प्रणीतों को त्याग दो" साधारण दयानन्द को ऋषि दयानन्द बना दिया। गुरु विरजानन्द की विमल कीर्त्ति के गान के लिये हम कविवर विद्याभूषण जी विभु को बधाई देते हैं। वस्तुतः इन्होंने 'देवर्षि दयानन्द' महाकाव्य लिखना प्रारम्भ किया था जिसमें श्री विरजानन्द जी का हाल भी स्वाभाविक ही था। परन्तु वह शताब्दि उत्सव तक पूरा न हो सका। अतः आवश्यकता हुई कि विरजानन्द जी का चरित्र अलग से लिखा जावे। 'विभु'

जी एक युवक कवि हैं। इनकी लेखनी में काव्य के प्रायः सभी गुण उपस्थित हैं। इनके छन्द मनोहर और सरस होते हैं। छोटे छोटे और सरल शब्दों में सूक्ष्म भावों को दर्शा देना इनको ख़ूब आता है। मैं आशा करता हूँ कि आर्य्य जनता इन के 'विरजानन्द विजय' को देखकर अवश्य प्रसन्न होगी।

अन्त में मैं श्री नारायण स्वामी जी प्रधान, शताब्दि महोत्सव को धन्यवाद देता हूं जिन्होंने मेरे कहने पर इस पुस्तक को शताब्दि ग्रन्थमाला में स्थान देने की कृपा की।

दयानिवास, प्रयाग,<br>
माघ पूर्णिमा,<br>
सं० १९८१ वि०

गंगाप्रसाद उपाध्याय, एम. ए.

# विषय-सूची

ओ३म्

# विरजानन्द-विजय

## प्रथम सर्ग

### गुरु-गौरव

विरज[1] पदों में जो आते।
विरजानन्द वही पाते॥
वेद यही बतलाते हैं।
विभु-गुण ऋषि-मुनि गाते हैं॥ १॥

संतो का सुख दाता है।
दुर्बल का हरि त्राता है॥
सबसे उसका नाता है।
ब्रह्म विराट विधाता है॥ २॥

अंधकार जब छा जाता।
पाप यहाँ आश्रय पाता॥
वेद विमुख नर हो जाते।
इसी लिये अति दुख पाते॥ ३॥

---

१ ईश्वर।

भक्तप्रवर तब आते हैं।
अपनी छटा दिखाते हैं॥
शिव-श्रुति-सत्ता फैलाते।
फिर सबको सुख पहुँचाते॥ ४॥

ऐसे नर कम होते हैं।
परहित जो तन खोते हैं॥
सफल उन्हीं का जीवन है।
और नहीं तो बंधन है॥ ५॥

सुमन सुगंध बहाता है।
तरणि तेज फैलाता है॥
परहित निरत अचेतन है।
यही तपस्वी का धन है॥ ६॥

विमल कीर्त्ति कल काया है।
प्राण स्मरण बताया है॥
जरा मरण से रहित वही।
रहते हैं सुख सहित वहीं॥ ७॥

तीन लोक के भूषण हैं।
वे पृथ्वी के पूषण[1] हैं॥
राज-तिलक के अधिकारी।
विरले ऐसे तनुधारी॥ ८॥

---

१ सूर्य्य।

संतों के हरिचंदन[1] हैं।
भक्तों के सुख-स्यंदन[2] हैं॥
जो सबके उर-नंदन हैं।
धन्य वही जग वंदन हैं॥ ९॥

आकर्षित हो रविकर से।
जल उठता है सागर से।
फिर नदियों से आता है।
आवागमन बताता है॥ १०॥

अमर नहीं कोई नर है।
नृप निर्धन या किंकर है।
नाम यहाँ रह जाता है।
यश परिमल[3] छितराता है॥ ११॥

लगा हुआ जीना मरना।
फिर मरने से क्या डरना।
मरना ही नवजीवन है।
जीवन को तन मन धन है॥ १२॥

यहाँ बहुत से भक्त हुए।
और अनेक विरक्त हुए॥
किन्तु न ऐसा उपकारी।
मिला हमें नर या नारी॥ १३॥

---

१ चंदन विशेष। २ रथ। ३ सुगन्ध।

जिनका यश हम गाते हैं।
विरजानन्द कहाते हैं॥
दयानन्द के गुरु ज्ञानी।
योगिराज अन्तर्य्यामी॥ १४॥

सत्यसिंधु गुण के गिरिवर।
विद्यावारिधि नियमनिकर॥
अंधकार में अवलम्बन।
पुण्यश्लोक पुरातन धन॥ १५॥

ब्रह्म-भूति के विस्तारक।
निगम नीति के निस्तारक॥
लोकोत्तर चरितों वाले।
निर्झर सुख सरितों वाले॥ १६॥

ज्ञान-भानु गुण-धाम हुए।
तापस यति निष्काम हुए।
तेजपुंज अभिराम हुए।
अचला ललित ललाम हुए॥ १७।

पाप तिमिर को भानु हुए।
कल्मष[1] हेतु कृशानु[2] हुए॥
मुनिवर सुषमा-कंद हुए।
दंडी विरजानंद हुए॥ १८॥

१ पाप। २ आग।

कर पारस की रखवाली।
किया हमें गौरवशाली॥
अर्थ-सुमन के वन-माली।
सौंपी श्रुति-मंजुलताली॥ १९॥

सीधा सा गुर बतलाया।
उलझन को यों सुलझाया॥
श्रुति में यौगिक शब्द सभी।
नहीं रूढि से काम कभी॥ २०॥

और अधिक क्या बतलावें।
वे सरस्वती कहलावें॥
निष्प्रभ पंडित हो जाते।
जब उनके सम्मुख आते॥ २१॥

रवि से चन्द्र प्रभा पाता।
फिर सारा जग चमकाता॥
दयानन्द ने तेज लिया।
आलोकित वह विश्व किया॥ २२॥

धन्य धन्य उनकी जननी।
धन्य धन्य यह देश धनी॥
जहाँ हुए जग-उपकारी।
महिमा गाते नर नारी॥ २३॥

विमल ध्वजा जो फहराती।
भूतल पर यश छहराती॥
ऋषि की विजय पताका है।
कीर्ति-कलायुत राका है॥ २४॥



# द्वितीय सर्ग

## बाल्य-काल

उस गुरु का है देश वही।
कहते हैं पांचाल मही॥
पञ्चप्राण सा पञ्चामृत।
जहाँ प्रकृति के पञ्च सुकृत॥ १॥

द्विज नारायणदत्त[१] प्रवर।
श्रुतिगामी विद्या के घर॥
गंगापुर में रहते हैं।
विज्ञ उन्हें नर कहते हैं॥ २॥

जहाँ व्यास[२] निज तीरों से।
पंजाबी वर वीरों से॥
खेल रही है बचपन से।
मुदित तरंगित जीवन से॥ ३॥

१ स्वामी विरजानन्द के पिता का नाम। २ नदी का नाम

उन नारायण के घर में।
जन्म लिया शुभ अवसर में॥
४ ५ ८ १
वेद प्राण वसु और धरा* ।
विक्रम संवत् मोद भरा॥ ४ ॥

सब विधि मंगलचार हुए।
होम यज्ञ सत्कार हुए॥
जननीजनक उदार हुए।
तुमुलनाद जयकार हुए॥ ५ ॥

पला प्यार में शिशु प्यारा।
जननी-जनक-नयन-तारा॥
दो मनमोदक प्रेमपगा।
सारे घर का भाग्य जगा॥ ६ ॥

अह विशूचिका[1] हत्यारी।
हरलीं दो आँखे प्यारी॥
दीपक युगल बुझाये हैं।
जीवन रत्न चुराये हैं॥ ७ ॥

लालों को हरने वाली।
रिक्त गोद करने वाली॥
शोकतिमिर भरने वाली।
अति निराशभरने वाली॥ ८ ॥

---

* सम्वत् १८५४ वि०

१ चेचक।

अहे ! पूतने ! मतवाली ।
संकट-शूलों की डाली ॥
आशा पर फेरा पानी ।
कैसी की यह नादानी ॥ ६ ॥

शिशु नयनों से हीन हुआ ।
बहुत विचारा दीन हुआ ॥
होते जो रवि सोम नहीं ।
चलता तो क्या काम कहीं ॥ १० ॥

घर पर पिता पढ़ाते हैं ।
नित्य कर्म सिखलाते हैं ॥
आठ बर्ष यों बीत गये ।
हुए अचानक दुःख नये ॥ ११ ॥

एक दिवस प्यारी जननी ।
छोड़ गई सहसा अवनी ॥
प्रेम-पालना भिन्न हुआ ।
सुख-तरु सारा छिन्न हुआ ॥ १२ ॥

पिता चल बसे तदनन्तर ।
टूट पड़ा संकट दुष्कर ॥
दुख बादल ने घेरा है ।
चारों ओर अंधेरा है ॥ १३ ॥

माता-पिता-विहीन हुए।
बिना वारि के मीन हुए॥
नेत्र-हीन अति दीन हुए।
शोक-सिन्धु में लीन हुए॥ १४

माता का वह करुणा-कर!
और पिता का प्रेम-निकर!
जाने कहाँ विलीन हुआ!
काल कलवेर पीन[1] हुआ॥ १५॥

माता के वे नयन युगल!
जिनमें भर आता था जल॥
बच्चे को लख तनिक विकल।
हो जाते थे अति चंचल॥ १६॥

पिता प्यार की छाया में।
बल आया था काया में॥
सब विध हाय अनाथ हुआ।
दुर्विपाक[2] बस साथ हुआ॥ १७॥

प्रोत्साहित करने वाले।
मन उमंग भरने वाले॥
अधर युगल निष्पंद[3] हुए।
निष्प्रभ कैरवचंद हुए॥ १८॥

१ मोटा। २ दुर्भाग्य। ३ बन्द

माता का वह स्नेह सलिल।
सूख गया हो अति पंकिल[१] ॥
फिर कैसे अरविंद खिले।
मन-वाञ्छित फल कहाँ मिले ॥ १९ ॥

यों उसका बेहाल हुआ।
बिना पारखी लाल हुआ ॥
कौन जानता यह बालक।
होगा भू-मणि अघ घालक। २० ॥

भार हुआ भौजाई को।
और काल-सम भाई को ॥
ख़बर नहीं उसकी लेते।
भोजन को गाली देते ॥ २१ ॥

बहुत आज कल भाई हैं।
सचमुच निरे कसाई हैं ॥
उनको सब कुछ जाया है।
या फिर अपनी काया है ॥ २२ ॥

भ्रातृ-भाव का नाम नहीं।
और किसी से काम नहीं ॥
कलह रात दिन होते हैं।
बीज दुखों का बोते हैं ॥ २३ ॥

१ कीचडमय।

फूट अतः बढ़ती आती।
दुर्व्यसनों की बन आती॥
फीका सारा रंग हुआ।
उलटा जग का ढंग हुआ॥ २४॥

सीता सी भौजाई को।
तथा भरत से भाई को॥
नहीं कहीं अब पाओगे।
ढूँढ़ ढूँढ़ मर जाओगे॥ २५॥

स्वार्थ-अनल से जल बंधन।
हो जाते हैं मुक्त स्वजन॥
कौन सहोदर भ्राता है।
यहाँ स्वार्थ का नाता है॥ २६॥

स्वार्थ-रबर सा घट बढ़कर।
फैलाता है जाल प्रखर॥
इष्ट खगों को कस लेता।
कहीं नाग सा डस लेता॥ २७॥

नहीं जानता बुरा भला।
मर्य्यादा का घोंट गला॥
लज्जा का शर्माता है।
अंधा स्वार्थ बनाता है॥ २८॥

जो कोमल कर से पाला।
जिसका रखते थे लाला॥
वह भूलो अब मरना है।
हे विधि ! यह क्या करता है॥ २९॥

जिनके जननी-जनक नहीं।
मिलता सुख क्या उन्हें कहीं॥
उनको घर क्या जंगल है।
जंगल ही में मंगल है॥ ३०॥

यह विचार, अति दुख पाकर।
तजकर अपना प्यारा घर॥
हृषीकेश में वह आये।
चित्त तपस्या में लाये॥ ३१॥

तपा हुआ जो तापों से।
या सांसारिक शापों से॥
वन है उसको शान्ति सदन।
खगमृग परिजन, कृत कीर्तन॥ ३२॥

# तृतीय सर्ग ।

## ज्ञान की खोज ।

हृषीकेश कान्तार[1] सघन ।
दिन में भी तम फिर निर्जन ॥
चित्रक भल्लुक पंचानन ।
रव करते डरता सुन मन ॥ १ ॥

जहाँ तुंग गिरि-शिखर खड़े ।
गंगाजी के गले पड़े ॥
बाधक हैं उसके पथ में ।
अटकाते रोड़े रथ में ॥ २

यह कैसा दुख-क्रन्दन है ।
या भागीरथि-स्यन्दन है ॥
इस कलकल में चैन कहाँ !
गिरि—जीवन संग्राम यहाँ ॥ ३ ॥

१ वन ।

इसी गहन में सुरसरि में।
लीन हुए जग-पति-हरि में॥
जिसकी गोदी में जाकर।
सुख पाते हैं दुखिया नर॥ ४॥

एक सच्चिदानन्द वही।
दीनबन्धु सुखकन्द वही॥
अशरणशरण पिता स्वामी।
करुणाकर अन्तर्यामी॥ ५॥

भूख प्यास से देह तपा।
तीन वर्ष गुरु मंत्र जपा॥
कहा किसी ने सपने में।
कमी न समझो अपने में॥ ६॥

वत्स! यहां से अब जाओ।
नहीं खेद मन में लाओ॥
हुआ तुम्हें जो होना है।
व्यर्थ समय का खोना है॥ ७॥

जप से जाग उठी कविता।
उर में उगा ज्ञान सविता॥
रुचिर कलापक[1] सरस बना।
की कुछ रामचरित रचना॥ ८॥

१—चार छंदों का एक वाक्य

गायत्री में यह बल है।
जप तप का उत्तम फल है॥
यम नियमों के सेवन से।
मुक्त हुआ नर जीवन से॥ ६॥

हरिद्वार का पंथ लिया।
विपिन भयंकर पार किया॥
धीर कार्य्य रत रहते हैं।
वीर वेदना सहते हैं॥ १०॥

देखे पूर्णानन्द यहाँ।
फिर अभिलाषा और कहाँ॥
इनसे ही सन्यास लिया।
विरजानन्द सुनाम दिया॥ ११॥

प्रिय परिजन से त्यक्त हुआ।
दर्शनेन्द्रियाशक्त हुआ॥
बालक जगत् विरक्त हुआ।
परमेश्वर का भक्त हुआ॥ १२॥

वर्ष अठारह अब बीते।
ब्रह्मचर्य्य गो[१] गण जीते॥
बढ़ी लालसा पढ़ने की।
उन्नति पथ पर चढ़ने की॥ १३॥

---

१ इन्द्रिय।

वैयाकरण मिला द्विजवर।
पढ़ने लगे वहीं रह कर॥
मध्यकौमुदी-पाठ लिया।
फिर षड् लिंग विचार किया॥ १४॥

ले ले नित नूतन संथा[१]।
भरते लालों से कंथा[२]॥
श्रम से सब कुछ आता है।
जल गिरि तोड़ बहाता है॥ १५॥

पढ़ते और पढ़ाते हैं।
अपना कोष बढ़ाते हैं॥
पूजा में लग जाते हैं।
इस विध समय विताते हैं॥ १६॥

सीधे हरिद्वार से चल।
आ पहुँचे यतिवर कनखल॥
पढ़ने में अति चाह रही।
सदा चाह में राह रही॥ १७॥

वे सिद्धान्तकौमुदी में।
(यथा चकोर कौमुदी में॥)
लग्न हुये अति तनमन से।
सुलभ हुआ सब साधन से॥ १८॥

---

१ पाठ। २ गुदड़ी।

तीर तीर वे सुरसरि के।
जाते परमभक्त हरि के॥
दौड़ हुई है जीवन में।
चेतन और अचेतन में॥ १९॥

दोनों का पथ दुर्गम है।
दोनों का दुष्कर क्रम है॥
आवर्तन है विभ्रम है।
कालसिंधु का निर्मम है॥ २०॥

प्रथम जहाँ होकर जाता।
शोकनिराशा फैलाता॥
अपर जहाँ से जाता है।
हरा भरा दिखलाता है॥ २१॥

महादेव का रम्य नगर।
काशी है विद्या का घर॥
हर विषयों के विद्वद्वर।
पाये जाते गुणी प्रवर॥ २२॥

सुन्दर अवसर हाथ लगा।
मानो सोता भाग जगा॥
एक वर्ष तक वास किया।
विद्या का अभ्यास किया॥ २३॥

पढ़ मनोरमा शेखर को।
भरा ज्ञान के आकर को॥
हुए न्याय में बढ़े चढ़े।
मीमांसा वेदान्त पढ़े॥ २४॥

दंडी पूरे त्यागी हैं।
निस्पृह और विरागी हैं॥
जो कुछ वह पढ़ लेते हैं।
औरों को सब देते हैं॥ २५॥

नहीं मधुप से ग्राहक हैं।
किन्तु पवन से वाहक हैं।
पहला संचय करता है।
अपर नित्य व्यय करता है॥ २६॥

दानों में विद्या भारी।
सब दानों की महतारी॥
सारे दुख हर लेती है।
कीर्त्तिमुक्तिसुख देती है॥ २७॥

दंडी अब विख्यात हुए।
विद्वानों में ज्ञात हुए॥
प्रज्ञाचक्षु उपाधि मिली।
विश्वनाथ की पुरी खिली॥ २८॥

एक दिवस कर विश्वविजय ।
मुझे करेगा यह निर्भय ॥
पापों का क्षय हो निश्चय ।
हो वेदों का भानु उदय ॥ २९ ॥

इसका कोई शिष्य प्रखर ।
फैलावेगा यश भू पर ॥
उद्धारक कहलावेगा ।
सत् शंकर बतलावेगा ॥ ३० ॥

कस कोपीन कसे कटि पर ।
कलित कमंडल शोभित कर ॥
एक बगल में मृगछाला ।
तनविभूति गल में माला ॥ ३१ ॥

तेजपुंज अविनाशी से ।
चले गया को काशी से ॥
एक जगह के ही वासी ।
कभी न होते सन्यासी ॥ ३२ ॥

ऋषिवर जाते हैं पैदल ।
मिले मार्ग में तस्कर[1] खल ॥
चिल्लाना उनका सुनकर ।
दौड़े कुछ सज्जन सत्वर ॥ ३३

---

१ चोर ।

इस विध चोरों से बचकर।
पहुँचे जगन्नाथ के घर॥
कुछ दिन संचय ज्ञान किया।
कलकत्ते प्रस्थान किया॥ ३४॥

फिर यतिवर सोरों आये।
मनन किया जो कुछ लाये॥
लख उनका पांडित्य प्रखर।
बोले विनयसिंह नरवर॥ ३५॥

स्वामी जी चलिये अलवर।
सेवा करूँ वहाँ दिन भर॥
बोले यों यतिवर त्यागी।
तुम राजा मैं वैरागी॥ ३६॥

साथ भला फिर हो कैसे।
( सोम सूर्य का हो जैसे॥ )
किन्तु बहुत सी विनती कर।
उन्हें ले गये नृप अलवर॥ ३७॥

दैवयोग से किसी दिवस।
भूपति अन्य काम के बस॥
पाठ न लेने को आवे।
हो अधीर ऋषि उठ धावे॥ ३८॥

नृप ने जब प्रण भंग किया।
मुनि ने यों कह मार्ग लिया॥
राजन्! जीवन छोड़ सकूँ।
किन्तु न प्रण मैं तोड़ सकूँ॥ ३६॥

तुम महीप मायावासी।
मैं स्वतन्त्र हूँ सन्यासी॥
तुम वैभव में भूल रहे।
जो मेरे प्रतिकूल रहे॥ ४०॥

होकर विदा चले ऋषिवर।
अपने प्रण को पूरा कर॥
सत्यसन्ध जो होते हैं।
बीज सत्य का बोते हैं॥ ४१॥

चाहे दुख का अभ्र[1] घिरे।
चाहे सिर पर वज्र गिरे॥
प्राण हरे नृप, मान घटे।
सन्त न प्रण से कभी हटे॥ ४२॥

राज भरतपुर में स्वामी।
ठहरे कुछ दिन गुणग्रामी॥
नृप ने अति सम्मान किया।
भूरि भेंट में दान दिया॥ ४३॥

१ बादल

नृप बलवन्त सिंह नामी।
वीरों के वर अनुगामी॥
राज भरतपुर में करते।
सन्तति का सब दुख हरते॥ ४४॥

फिर आये मुड़सान नगर।
टीकमसिंह नृपति के घर॥
हुआ अतिथि स्वागत समुचित।
हैं सर्वत्र पूज्य पण्डित॥ ४५॥

विचरण करते गंगा पर।
आ पहुँचे सोरों श्रुत-धर॥
यहाँ रोग ने आ घेरे।
उठने को जीवन-डेरे॥ ४६॥

दिन पर दिन रुज[१] वृद्धि हुई।
क्षीण कलेवर ऋद्धि हुई॥
बद्ध विपुल यमपाश हुए।
इस जीवन्त हताश हुए॥ ४७॥

कौन जानता विधिगति को।
देखा स्वस्थ पुनः यति को॥
सत्य पंथ जतलाने को।
गुप्त कोष बतलाने को— ४८॥

१ रोग।

चले गये जो ऋषि होते।
हम अपना सब कुछ खोते॥
होता ही क्या फिर रोये।
धब्बे क्या जाते धोये॥ ४६॥

प्रभु को यह स्वीकार नहीं।
क्या उसके विपरीत कहीं॥
हो सकता भूमण्डल में।
यह बल है आखण्डल[1] में॥ ५०॥

जो यह कोष गुप्त रहता।
ऋषि का नाम लुप्त रहता॥
मनुज बहुत आते जाते।
विरले सद्गुरु कहलाते॥ ५१॥

चले निरामय हो यतिवर।
ज्ञान कोष को पूरा कर॥
सुरगुरु से विद्या बल में।
लगे बिचरने भूतल में॥ ५२॥

१ इन्द्र

# चतुर्थ सर्ग

## विजय

लगे पर्य्यटन ऋषि करने।
विपुल नगर गिरि वन झरने—
देख देश का अधःपतन।
मानो बंद हुए लोचन॥ १॥

ब्रज मंडल में विचरण कर।
पहुंचे यति यमुना तट पर॥
केलिकुञ्ज ब्रजनन्दन के।
रणथल कंसनिकन्दन के॥ २॥

लीलाधाम कन्हैया के।
हे बिहार बलभैया के॥
वासुदेव के वृन्दावन।
गिरिधारी के गोवर्धन॥ ३॥

मधुवन कृष्णमुरारी के—
गीता-ज्ञान-प्रचारी के ॥
गोचर गो-गोपालों के ।
फल बन सरस रसालों के ॥ ४ ॥

छुगनमगन[1] के वंशीवट ।
योगिराज के यमुना तट ॥
हे करील-कंकोल-सदन !
हे कदम्ब-छाया-उपवन !! ५ ॥

मक्खन और दूध के घर ।
ऋषि मुनियों के वास निकर ॥
कालिन्दी के क्रीडास्थल ।
सबके प्यारे व्रजमंडल ॥ ६ ॥

श्रीहत क्यों अति दीन हुआ ।
गौरव क्या प्राचीन हुआ ॥
योगिराज श्रीकृष्ण कहाँ ।
उलटे हैं सब ढंग यहाँ ॥ ७ ॥

अब प्रसन्न तुझ से विधि है ।
भेजा केशव[1] प्रतिनिधि है ॥
तेरा फिर उद्धार करे ।
अन्धकार-विस्तार हरे ॥ ८ ॥

१ श्रीकृष्ण

३ ९ ८ १
गुण निधि वसु विधु संवत्सर* ।
आये मथुरा में यतिवर ॥
मंदिर में आसीन हुए ।
अध्यापन में लीन हुए ॥ ९ ॥

घर ले पुनः किराये पर ।
लगे पढ़ाने वे गुरुवर ॥
न्याय व्याकरण विविध विषय ।
पढ़ते वटु उनसे अतिशय ॥ १० ॥

प्रातः भानु जगाता है ।
कमल सुरभि बिखरात है ॥
आकर्षित अलि आते हैं ।
अभिमत रस को पाते हैं ॥ ११ ॥

इसी भाँति पाण्डित्य प्रखर ।
फैला उनका वसुधा पर ॥
दूर दूर से वटु आते ।
मन वाञ्छित फल को पाते ॥ १२ ॥

गुरु श्री रंगाचारी† के ।
अतिथि जगत व्यापारी के ॥
कृष्ण‡ विपश्चित्[१] विद्याधर ।
मथुरा आये विद्वद्वर ॥ १३ ॥

संवत १८९३ वि० । †सेठ राधा कृष्ण के धर्म गुरु श्री रंगाचार्य ।
‡ रंगाचार्य के गुरु पं० कृष्णशास्त्री । १ पंडित ।

उनके पंडित शिष्य* युगल ।
दंडी जी के वटुक† प्रबल ॥
आपस में बतलाते हैं ।
निज निज गुण दिखलाते हैं ॥ १४ ॥

"अजाद्युक्ति" पर वाद बढ़ा ।
श्रोताओं का स्वाद बढ़ा ॥
दे दे अपनी युक्ति प्रबल ।
बल दिखलाते दोनों दल ॥ १५ ॥

वटु षष्ठी[1] बतलाते हैं ।
पंडित हँसी उड़ाते हैं ॥
नहीं, सप्तमी एक वचन ।
दोनों में बस यह उलझन ॥ १६ ॥

हुआ नहीं कुछ भी निर्णय ।
बोल उठे चौबे जय जय ॥
जय जय जमुना मैया की ।
जय जय सेठ रुपैया की ॥ १७ ॥

पुनः सेठ‡ ने निज बल से ।
कुछ रुपये से कुछ छल से ॥
विजय व्यवस्था दिलवाई ।
जल पर यों छाई काई ॥ १८ ॥

* लक्ष्मण ज्योतिषी और मुरमुरिया पंड्या । † चौबे गंगादत्त और रविदत्त । ‡ सेठ राधाकृष्ण । १ षष्ठी तत्पुरुष समास ।

जो पंडित लोभी धन के।
वे पूरे कलुषित मन के॥
कहाँ सत्य का फिर निर्णय।
पक्षपात की हुई विजय॥ १६॥

विज्ञ आगरा काशी के।
अनुचर मायादासी के॥
कृष्णपक्ष में रहे सभी।
लोभी से क्या न्याय कभी॥ २०॥

पंडित राज कर्मचारी।
सब ने ही हिम्मत हारी॥
किया लोभ वश हे भगवन।
अपना अन्तः करण हनन॥ २१॥

पोच हुए पंडित पामर।
यम का रहा न कुछ भी डर॥
पढ़े लिखे पर चढ़े नशा।
क्या होगी फिर अज्ञ दशा॥ २२॥

धन धरती पर अद्भुत कल।
सर्व समस्या होतीं हल॥
धन से निर्भय धन से जय।
धन के नित नूतन अभिनय॥ २३॥

हीन देश के लक्षण हैं।
बिकते जहाँ विचक्षण हैं॥
जहाँ सत्य का भक्षण है।
वहाँ कौन विध रक्षण है॥ २४॥

क्या वह जीवित जाति कहीं।
अनुचित उचित विचार नहीं॥
जहाँ सत्य कुचला जाता।
और झूठ आदर पाता॥ २५॥

इस प्रकार हो खिन्न बड़े।
सोच रहे गुरुवर्य खड़े॥
"यद्यपि मैं हूँ सत्पथ पर।
किन्तु न सुनता कोई नर॥ २६॥

लालच ने मुख बन्द किया।
नहीं सत्य का पक्ष लिया॥
लालच से क्या ताप नहीं।
करते क्या क्या पाप नहीं" ॥ २७॥

लगे खोज यतिवर करने।
"मिलें कहीं ऋषिकृत झरने॥
तब मैं यह दिखलाऊँगा।
सत संथा सिखलाऊँगा॥ २८॥

अघ बादल सब टल जावे ।
झूठ हिमोपल गल जावे ॥
चमकाऊँ उज्ज्वल मोती ।
सदा सत्य की जय होती" ॥ २९ ॥

छोटी घटना जो होती ।
कभी विचित्र बीज बोती ॥
बड़े काम में आती है ।
काया पलट बनाती है ॥ ३० ॥

फल तितली के पंखों का—
और सिंधु के शंखों का—
नये सुमन पैदा करते ।
मन में अति उमंग भरते ॥ ३१ ॥

एक कंकरी के बल से ।
उठते हैं तरंग जल से ॥
या हिलने से नलदल के ।
पवन हिलोरे ले झलके ॥ ३२ ॥

सूर्य्य किरण जो आती है ।
पंकज-पुष्प खिलाती है ॥
जल लेकर बरसाती है ।
भू उर्वरा बनाती है ॥ ३३ ॥

कभी कभी लघु बातों से ।
या जग के संघातों से ॥
परिवर्त्तन हो जीवन में ।
भूरि भेद परिवर्त्तन में ॥ ३४ ॥

एक दक्षिणी विद्वद्वर ।
पाणिनि मुनि के सूत्र प्रखर ॥
एक दिवस तारस्वर से ।
पढ़ता था कुछ अन्तर से ॥ ३५ ॥

आदि अंत लों श्रवण किया ।
विकसित अंतः करण किया ॥
अष्टाध्यायी में दे मन ।
यतिवर करने लगे मनन ॥ ३६

खुले अचानक दिव्य नयन ।
मिला आज चिरवाञ्छित धन ॥
"कर्तृकर्मणोः कृति" ने अब ।
साक्षी दे सुलझाया सब ॥ ३७ ॥

धन्य धन्य अष्टाध्यायी ।
मिला नहीं तुझसा न्यायी ॥
सूत्र प्रणेता पाणिनि जय ।
धन्य धन्य हे मुनि-कुवलय ॥ ३८ ॥

श्रद्धा ऋषि मुनि ग्रन्थों में।
ग्लानि अवैदिक पंथों में॥
बढ़ी और तब यतिवर की।
नर क्या जाने गति हर की॥ ३९॥

महाभाष्य फिर हाथ लगा।
सूत्रों का संताप भगा॥
पुनः निघण्टु-निरुक्त मिले।
श्रुतिमंत्रार्थप्रसून खिले॥ ४०॥

लेकर वे इस पारस को।
या सरस्वती-सारस[१] को॥
लोहा स्वर्ण बनाते हैं।
क्षीर नीर विलगाते हैं॥ ४१॥

मनुज ग्रन्थ का मान घटा।
ऋषियों की सम्मान छुटा॥
तब से वे फैलाते हैं।
सबको सुख पहुँचाते हैं॥ ४२॥

लक्ष्य बनाया जीवन का।
ध्येय रहा तब से मनका॥
आडम्बर का अंत हुआ।
श्रुतिका सूर्य्य ज्वलन्त हुआ॥ ४३॥

---

१ हंस

यों छः मास व्यतीत हुए।
लक्ष्मण* ज्वर से भीत हुए॥
बड़ी विकलता ने घेरा।
समझे दण्डी का फेरा॥ ४४।

अतः सेठ को समझा कर।
भेजा यति की कुटिया पर॥
चाही क्षमा मुनीश्वर से।
सम्पुट अपने दो कर से॥ ४५॥

कहा सेठ ने तब आकर।
सुनिये विनय कृपासागर॥
लक्ष्मण जी का रोग हटे।
मुद्राओं से कुटी पटे॥ ४६।

स्वामी जी बोले हँस कर।
बनते क्यों अज्ञानी नर॥
व्यर्थ तुम्हारा यह भ्रम है।
इस देही का यह क्रम है॥ ४७॥

एक हजार मिलाऊँ मैं।
जो अच्छा कर पाऊँ मैं॥
धर्म नहीं मम परपीडन।
बदला लेते ओछे जन॥ ४८

---

* पं० कृष्ण शास्त्री के शिष्य जिन्होंने दंडी जी के शिष्यों से शास्त्रा कर मिथ्या विजय प्राप्त की थी। उनको यह भ्रम हो गया था कि दंडी के मंत्र चलाने से मुझे ज्वर आ गया है।

कर्मों का केवल भरना।
सुख दुख या जीना मरना॥
नहीं मनुज के कर में है।
नियम यही घर घर में है॥ ४९॥

सारे संशय सेठ तजो।
चित लाकर भगवान भजो॥
वही सृष्टि का कर्ता है।
वही पुनः संहर्ता है॥ ५०॥

सेठ वेग निज घर आये।
रोगी को लख घबराये॥
लक्ष्मण काल ग्रास होकर।
गये स्वर्ग को तदनन्तर॥ ५१॥

दंडी की अति चाह यही।
ऋषियों से हो पूर्ण मही॥
मुनिकृत ग्रंथ पढ़ाते हैं।
नरकृत घटते जाते हैं॥ ५२॥

मनोरमा का मान घटा।
शेखर का अब शीश कटा॥
मुक्तावली टूट बिखरी।
सारस्वत निस्सार तरी॥ ५३

चमक चन्द्रिका मंद हुई।
पंचदशी भी बंद हुई॥
भाग्य भागवत का फूटा।
पिंड पुराणों से छूटा॥ ५४॥

शीघ्रबोध अवरोध हुआ।
पुष्पित श्रुति-न्यग्रोध[१] हुआ॥
कृत्रिमता युग बीत गया।
ऋषियों का रवि उगा नया॥ ५५

जिसके सम्मुख तम तस्कर।
नहीं ठहर सकता क्षणभर॥
शिष्य वहाँ जो आते हैं।
इससे लाभ उठाते हैं॥ ५६॥

नृपगण के बतलाने को।
उन्हें मार्ग पर लाने को॥
नगर आगरा में आये।
यहाँ अनेक नृपति पाये॥ ५७

मिले जयपुराधीश प्रवर।
रामसिंह ने यति लखकर॥
बिठलाया सिंहासन पर।
किया बहुत ऋषि का आदर॥ ५८॥

---

१ बरगद।

और सपर्य्या[1] की अतिशय ।
किन्तु कामना मंगलमय ॥
यहाँ न पूर्ण हुई यति की ।
बलिहारी है विधि गति की ॥ ५९ ॥

घडवडं मथुरा आये ।
पंडित गण सब बुलवाये ॥
अपने शिष्यों को लेकर ।
पहुँचे शीघ्र वहाँ यतिवर ॥ ६० ॥

साहब का सुन उच्चारण ।
बोले ंडी यों तत्क्षण ॥
किसने इसे पढ़ाया है ।
नहीं बोलना आया है ॥ ६१ ॥

साहब सहज वीरता से ।
हुआ प्रसन्न धीरता से ॥
भूरि प्रशंसा की यति की ॥
निर्भीकता विमल मति की ॥ ६२ ॥

भाष्य "पधितव्यं" का कर ।
दिखलाया पांडित्य प्रखर ॥
और प्रमाण अनेक दिये ।
गट्टूलाल* परास्त किये ॥ ६३ ॥

---

१ पूजा । * बम्बई के प्रसिद्ध पंडित गट्टूलाल अष्टावधानी ।

महाभाष्य का सूत्र प्रवर।
"सार्व धातुके यक्" लेकर॥
दिखलाये वाह्याभ्यन्तर।
सके नहीं गोपाल* ठहर॥ ६४॥

एक चतुर श्रुतधर आया।
यति ने नीचा दिखलाया॥
वैदिक शब्द प्रयोग किये।
अपना सा मुँह चला लिये॥ ६५

पुनः अनन्ताचार्य† भिड़े।
बीत गये कुछ मास छिड़े॥
फिर लोहे के समझ चना॥
गये भाग कुछ व्याज बना॥ ६६॥

एक एक से विद्वद्वर।
विजय हेतु आते दिन भर॥
किन्तु हार कर जाते हैं।
सब यति का यश गाते हैं॥ ६७

नित्य विजय पर विजय मिली।
कीर्त्ति कौमुदी कलित खिली॥
हुये तिमिर से बुध खंडित।
डरते काशी के पंडित॥ ६८॥

---

* ग्वालियर के विख्यात वैयाकरण पं० गोपालाचार्य † रंगाचार्य्य के

जिनका विद्या बाना है।
उनका यहीं ठिकाना है॥
विरजानन्द शिष्य होते।
अपने सब संशय खोते॥ ६९ ॥

दूर दूर के विद्वद्वर।
निराकरण शंकायें कर॥
अपना काम चलाते हैं।
यति—गुण—गौरव गाते हैं॥ ७० ॥

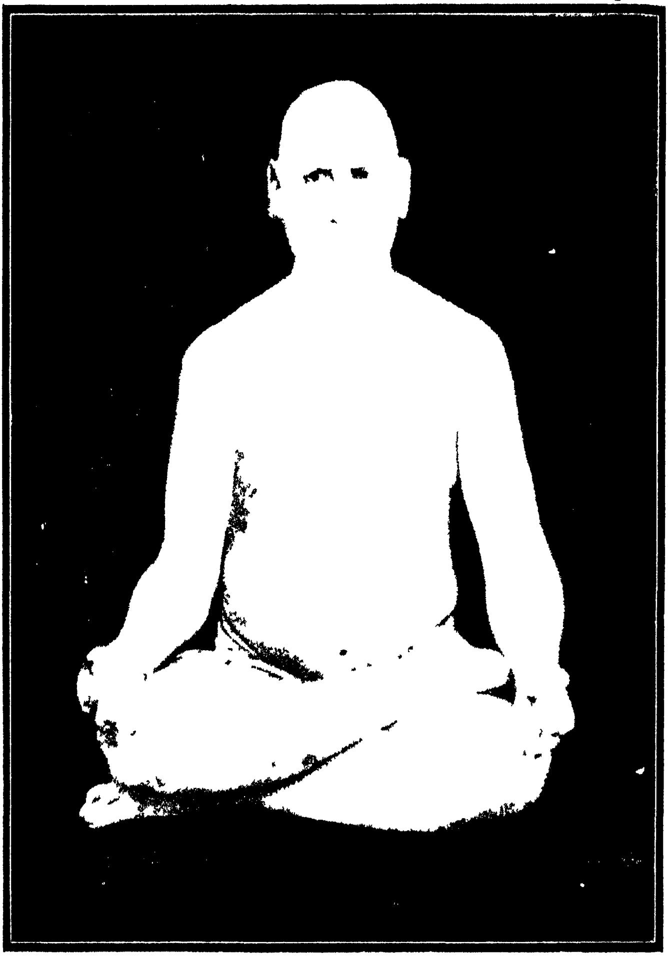
सुत सा शिष्यों का पालन।
करते हैं यतिवर लालन॥
जो कुमार्ग पग धरते हैं॥
कड़ी ताड़ना करते हैं॥ ७१ ॥

करते वेदों का मंडन।
और मूर्त्ति पूजा खंडन॥
श्रुति को स्वतः प्रमाण बता।
दिखलाते हैं गौरवता॥ ७२ ॥

इस प्रकार ऋषि मधुवन में।
दिव्य छटा लेकर तन में॥
जो भूले भटके आते।
उनको सत्पथ बतलाते॥ ७३ ॥

दीपस्तम्भ निकर बन कर।
तमोपुंज भव-सागर पर॥
तनू-पोत-पथ दिखलाते।
चतुर्वर्ग जिससे पाते॥ ७४॥

श्रुति रवि आविर्भाव हुआ।
मत-तारों का स्राव हुआ॥
अमरों में ज्यों स्कंद हुए।
विजयी विरजानन्द हुए॥ ७५॥



आर्य्यसमाज के प्रवर्त्तक श्री स्वामी दयानन्द जी सरस्वती।

जन्म सं० १८८१ वि० ] [ मृत्यु सं० १९४०

# पंचम सर्ग

## गुरु और शिष्य

रजनी के नभ में तारे।
झिल मिल हो छिपते सारे॥
विरले ही विधु होते हैं।
अंधकार जो खाते हैं॥ १॥

रविमणि एव पिघलता है।
पत्थर का दिल गलता है॥
सदय बहुत कम नर नारी।
कोई कोई उपकारी॥ २॥

उल्लू दिन में सोते हैं।
मुदित विचरते तोते हैं॥
कुछ अनूप हैं कुछ मरु हैं।
कुछ निष्फल कुछ फलतरु हैं॥ ३॥

पास नहीं साधन कोई।
मिले उचित भाजन कोई॥
सोपूँ संचित वैदिक धन।
केवल यह गुरुवर-चिन्तन॥ ४॥

जो उदार जन होते हैं।
( खाते पीते सोते हैं॥ )
परहित में रत रहते हैं।
चाहे अति दुख सहते हैं॥ ५॥

खल कहता "यह मेरा है।"
क्या मेरा क्या तेरा है॥
जो उदार साधू नर है।
वसुधा ही उसका घर है॥ ६॥

७ १ ९ १
ऋषि भू निधि शशि संवत्सर*।
मधु[1] माधव का सखा प्रवर॥
प्रकृति पवित्र खिलाता है।
नव प्राचीन मिलाता है॥ ७॥

हँसती है सब ठौर मही।
सरस मंजरी बौर रही॥
गंध भरा मलयानिल में।
मोद विनोद भरा दिल में॥ ८॥

मधुप मस्त हैं तानों में।
कोयल कीर वितानों में॥
वर्षा हुई सुधा की है।
गोद भरी वसुधा की है॥ ९॥

* सं० १९१७ वि०। १ चैत्र

उछल रहे मृग खेतों में।
आम पड़ी है रेतों में॥
तरुओं पर छाया दल का।
या उल्लास कृषीवल का॥ १०॥

बल पकड़ा है ढीलों ने।
बदला रंग करीलों ने॥
शुचि वसंत का चित्र खड़ा।
या संतों का मित्र खड़ा॥ ११॥

पल्लव ओज झलकता है।
मुकुलोल्लास छलकता है॥
कालिन्दी माला तन में।
मोद आज है मधुवन में॥ १२॥

तेज पुंज गुर्जर वासी।
आते व्रज में सन्यासी॥
पुनः द्वारका से निज घर।
आते हैं या योगीश्वर॥ १३॥

अस्त हुआ जो रवि जाकर।
पश्चिम से फिर कतराकर॥
व्रज आलोकित करता है।
प्रकृति मोद से भरता है॥ १४॥

जो छवि है इस आनन की।
सो शोभा ब्रज कानन की॥
ब्रह्मचर्य का पूरा बल।
दमक रहा है मुख मंडल॥ १५॥

हाथ कमंडल बाघम्बर।
विचर रहे मानो दिनकर॥
रज में भी तन राज रहा।
विरज नाद उर बाज रहा॥ १६॥

विरजानन्द-खोज करते।
आते हैं दुख सर तरते॥
जिसने ढूँढा पाया है।
यह सिद्धान्त बताया है॥ १७॥

जमुना के पश्चिम तट पर।
है मथुरा नगरी सुंदर॥
जहाँ कुटीर सचेतन है।
अनुपम शांति निकेतन है॥ १८॥

पहुँच वहाँ पर परिव्राजक।
खड़े रहे कुछ देरी तक॥
द्वार खटखटा कर कर से।
बोले वेग उच्च स्वर से॥ १९॥

"द्वार खोलिये कृपायतन ।
आया हूँ जिज्ञासु बन ॥
प्यासा हूँ श्री दर्शन का ।
खोजी ईश निरंजन का" ॥ २० ॥

"शब्द किवारों का सुन कर ।
अंदर से बोले यतिवर ॥
क्या है तेरा नाम बता ।
मुझसे है क्या काम बता ॥ २१ ॥

यहाँ शिष्य शिक्षा पाते ।
विघ्न डालने क्यों आते ॥
जो गृहस्थ, कुछ काम नहीं ।
भिक्षुक के हित दाम नहीं" ॥ २२ ॥

"दयानन्द, हे कृपायतन !
कहते हैं मुझको सज्जन ॥
खोजी हूँ उस ज्ञानी का ।
निर्विकार के ध्यानी का ॥ २३ ॥

भटका भूला इधर उधर ।
फिरता हूँ संतत गुरुवर ॥
बना लीजिये अधिकारी ।
कृपा कीजिये तपधारी ॥ २४ ॥

आगन्तुक के नम्र वचन।
सुनकर बोले कृपायतन॥
"क्या कुछ है व्याकरण पढ़ा।
पहली सीढ़ी जो न चढ़ा॥ २५॥

उसको क्या आ सकता है।
व्यर्थ घूम कर थकता है॥
यह विद्या की ताली है।
इसकी ज्योति निराली है॥ २६॥

दिव्य नयन खुल जाते हैं।
संशय—मल धुल जाते हैं॥
जो न व्याकरण का ज्ञाता।
नहीं यहाँ आने पाता"॥ २७॥

दयानन्द बोले "गुरुवर।
कौमुदि-सारस्वत पढ़कर॥
आया हूँ श्री चरणों में।
यश ले अंतःकरणों में"॥ २८॥

"अहे कौमुदी सारस्वत।
हुए लोग पढ़ कर जड़वत॥
राहु केतु पाणिनि रवि के।
शोषक हैं संसृति छवि के॥ २९॥

जाकर यमुना के तट पर।
जल में इन्हें बहा सत्वर॥
पढ़ा लिखा सब विस्मृतकर।
तब आओ इसके भीतर॥ ३०॥

फिर कपाट खुल जावेंगे।
छिपे भेद दिखलावेंगे॥
रहे नहीं फिर कुछ संशय।
हो जावेगा स्वच्छ हृदय"॥ ३१॥

गुरु की यह आज्ञा पाकर।
आये झट यमुना तट पर॥
जल में ग्रन्थ बहाये हैं।
दिल से सभी भुलाये है॥ ३२

गुरु अनुशासन पालन कर।
फिर आये वटु कुटिया पर॥
द्वार खुला अब पाया है।
गुरु को हाल सुनाया है॥ ३३॥

हो प्रसन्न बोले श्रुतधर।
(दिव्य तपोनिधि योगीश्वर)॥
सच्छात्राज्ञाकारी है।
हिम्मत की बलिहारी है॥ ३४॥

अब मैं तुझे पढ़ाऊँगा।
सब विद्या सिखलाऊँगा॥
सच्चा शिष्य बनाऊँगा।
हीरक सा चमकाऊँगा॥ ३५॥

मिला शुक्र को कच जैसा।
या सुर गुरु को बुध ऐसा॥
या कौशिक को राम मिले।
यति के सातो पद्म खिले॥ ३६॥

खड़े हुए विद्वानों से।
ऋषि कृत अक्षय खानों से॥
मणि चुन चुन कर रखते हैं।
शोभा अमित निरखते हैं॥ ३७॥

या ऋषि अविरल झरनों से।
बहते जो गुरु चरणों से॥
दयानन्द नित जीभर कर।
भरते हैं निज मस्तक सर॥ ३८॥

मार्जन कर रखते निर्मल।
मज्जन को ला यमुना जल॥
मन गुरु सेवा में लाते।
सेवा से मेवा पाते॥ ३९॥

गुरु के भक्त अनन्य बने।
इसीलिये जग धन्य बने॥
गुरु का आशीर्वाद फला।
फैली उनकी दिव्य कला॥ ४०॥

गुरु मा बापों से बढ़कर।
पूजनीय है वसुधा पर॥
गुरु आज्ञा पर चलते हैं।
वे दुनियां में फलते हैं॥ ४१॥

दया दृष्टि गुरुवर की हो।
तो सब विद्या घर की हो॥
पढ़ने में श्रम करते हैं।
श्रम से ही सब तरते हैं॥ ४२॥

श्रुति ऋषि ग्रन्थों को पढ़कर।
दयानन्द बन विद्याकर॥
मन में स्वयं विचार करें।
चलकर जग उपकार करें॥ ४३॥

क्या ले गुरु की भेंट धरें।
जिससे आशिष ले विचरें॥
विदा मांगने खाली कर।
जाऊँ मैं क्या मुँह लेकर॥ ४४॥

कहाँ दक्षिणा को गुरुवर।
पूछेंगे तो क्या कह कर॥
मैं उनसे बतलाऊँगा।
दाम कहाँ से पाऊँगा॥ ४५॥

क्या गुरु के उपकारों का।
बदला उनके प्यारों का॥
दे सकता हूँ जीवन में।
यह विचार कर निज मन में॥ ४६॥

थोड़ी सी लौंगें लेकर।
पुनः पास गुरु के जाकर॥
नत मस्तक हो चरण छुए।
गुरुपूजा में लग्न हुए॥ ४७॥

हे करुणालय करुणाकर।
योगिराज यमवत यतिवर॥
देव दयानिधि दोषदलन।
हे तापस तेजस्वी तन॥ ४८

हे प्रतिमा-पूजन-भंजन।
पाप अवैदिक मत गंजन॥
हे शिष्यों के मन-रंजन।
हे भारत के मुनि खंजन॥ ४९॥

हे गुरुवर हे गुणसागर।
हे विद्याखनि श्रुतिनागर॥
ज्ञान भानु हे तेज निकर।
हे ऋषियों के प्रतिनिधि वर॥ ५०॥

किंकर यदपि अकिंचन हूँ।
तदपि आपका ही जन हूँ॥
विदा माँगने आया हूँ।
देवकुसुम[1] कुछ लाया हूँ॥ ५१॥

देव! इन्हें अब स्वीकृत कर।
दया कीजिये किंकर पर॥
यह मेरा लघु तर्पण है।
श्रद्धा सहित समर्पण है॥ ५२॥

पीठ ठोक अपने कर से।
गुरुवर बोले मृदु स्वर से॥
धन्य धन्य हे शिष्य प्रवर।
तुझसा मिला न कोई नर॥ ५३॥

अब तक शिष्य अनेक हुए।
नहीं काम के एक हुए॥
रवि सब जगह चमकता है।
केवल काँच दमकता है॥ ५४॥

१ लौंग

मिले न माणिक नग नग में ।
मुक्ता गज गज में, जग में ॥
कहीं कहीं चंदन होता ।
विरला वटु नंदन होता ॥ ५५ ॥

मेरी यह अभिलाषा है ।
तुम से ही बस आशा है ॥
अब जग का उपकार करो ।
जगतीतल का भार हरो ॥ ५६ ॥

अंधकार अति छाया है ।
जाल प्रपंच बिछाया है ॥
श्रुति का स्रोत विलीन हुआ ।
धर्म धरा से हीन हुआ ॥ ५७ ॥

निर्विकार को भूल गये ।
रचते हैं नित देव नये ॥
जिसे गढ़ा अपने कर से ।
आशा क्या उस पत्थर से ॥ ५८ ॥

अमर अजन्मा कहलाता ।
फिर बंधन में क्यों आता ॥
जिसके कुछ भी परे नहीं ।
लेता है अवतार कहीं ?? ५९ ॥

मनुज ग्रन्थ वर्षाभू[1] से।
उछल रहे हैं इस भू से॥
ऋषि-रत्नों को निगल रहे।
कैसे अघविष हाय! दहे॥ ६०॥

धर्म पुरातन फैलाओ।
उसी सभ्यता को लाओ॥
जाकर वेद प्रचार करो।
अंधकार को क्षार करो॥ ६१॥

जो कुछ मिली धरोहर है।
इच्छा उसकी घर घर है॥
आओ जग में नाद करो।
उजड़ा घर आबाद करो॥ ६२॥

नहीं दान का भूखा हूँ।
नहीं मान का भूखा हूँ॥
परहित ही बस प्यारा है।
जीवन लक्ष्य हमारा है॥ ६३॥

दयानन्द बोले भगवन।
चरणों में अर्पण तन मन॥
गुरु आज्ञा से व्रत दुष्कर।
धारण करता हूँ यतिवर॥ ६४॥

---

१ मैंढक

जब तक श्रुतिका शब्द रहे।
जब तक आगम अक्ष रहे॥
जब तक जीव रहे तन में।
निरत रहूँ व्रतपालन में॥ ६५

भीष्म-प्रतिज्ञा सुन गुरुवर।
बोले यों पुलकित होकर॥
कर आशा का अभिसिंचन।
हरा किया यह मेरा मन॥ ६६

शिष्य शिरोमणि प्यारों से।
वचनों की बौछारों से॥
विद्या सारी सफल हुई।
भक्त प्रतिज्ञा अटल हुई॥ ६७॥

तू ही अंधे की लकड़ी।
तेरी ही अँगुली पकड़ी॥
तेरा एक सहारा है।
तू पथ दर्शक तारा है॥ ६८॥

होते थे हा! यज्ञ जहाँ।
अब होते दुष्कृत्य वहाँ॥
अघ ने लगा लिया डेरा।
अनाचार ने आ घेरा॥ ६९॥

भारत का मुख उज्ज्वल कर।
आशिष देता शिष्य प्रवर॥
प्रभु खल का संघार करे।
नाव निमज्जित पार करे॥ ७० ॥

यश फैले तेरा ऐसा।
देवकुसुम परिमल जैसा॥
अचला पर नित चला करे।
जा प्रभु तेरा भला करे॥ ७१ ॥

गुरुप्रसाद पा हर्षित मन।
दयानन्द ने किया गमन॥
गुरु का आशीर्वाद चला।
या भारत का भाग्य भला॥ ७२ ॥

या श्रुतियों का स्रोत बहा।
धर्म पोत पतवार, अहा॥
शान्ति भक्ति का मंजुल सर।
बह निकला अब वसुधा पर॥ ७३ ॥

या विद्या का विग्रह है।
या ऋषियों का निग्रह है॥
या आनन्द-दया-सागर।
उद्वेलित हो बहा उधर॥ ७४ ॥

था ऋत[1] कुमुद कलाधर है।
ज्ञान-सरोज-दिवाकर है॥
क्या कथा जावे और कहा।
उचित नहीं उपमान रहा॥ ७५॥

मुदित आज गुरुवर मन में।
पुलकावलि छाई तन में॥
सत्य विजय, तम का क्षय है।
निश्चय अब धर्मोदय है॥ ७६॥

हे अखिलेश अनंत प्रभो!
भासमान भगवंत प्रभो!!
हे शरण्य! हे सुख सागर!
दीनबंधु! हे दयानिकर!! ७७॥

विश्वपते! व्याधा भंजन!
हे आनन्द कन्द! भगवन!!
तेरी हो घर घर वाणी।
सुख पावें सारे प्राणी॥ ७८॥

१ सत्य

# षष्ठ सर्ग।

## सूर्यास्त

यति ने रत्न अमोल दिया।
पूरा निज उद्देश्य किया॥
चिन्ता रही न अब मन में।
जाते दिन हरि चिन्तन में॥ १॥

प्रभु की भूरि सपर्या से।
साधारण दिनचर्य्या से॥
अपने दिवस बिताते हैं।
फल पय केवल खाते हैं॥ २॥

प्रिय प्रियंगु[1] श्री संभक[2] हैं।
दोनों बुद्धि विवर्धक हैं॥
ऋतु ऋतु में कर परिवर्त्तन।
करते हैं सात्विक भोजन॥ ३॥

---

१ माल कांगनी। २ लौंग।

एक दिवस विष तोले भर।
गये भूल से खा यतिवर॥
चढ़ने उनको लगा नशा।
हुई बिगड़ कर बुरी दशा॥ ४॥

वे जल के लोटे भर भर।
रहे डालते निज सिर पर॥
यों प्राणों को बचा लिया।
नहीं अन्य उपचार किया॥ ५॥

ब्रह्मचर्य्य से मुख मंडल।
चमक रहा है अति उज्ज्वल॥
भाल विशाल कपाल कला—
चकित न होता कौन भला॥ ६॥

एक निशीथ समय यतिवर।
उदयप्रकाश शिष्य के घर॥
पहुँचे, सब सोते पाये।
पुनः किवार खटखटाये॥ ७॥

कहा शिष्य ने घबरा कर।
कैसे कष्ट किया मुनिवर॥
चरण यहाँ रख धन्य किये।
जो आज्ञा गुरुवर। कहिये॥ ८॥

नहीं शेष से जो सुलझा।
रहा बहुत दिन में उलझा॥
सूत्र समझ में अब आया।
समाधान उसका लाया॥ ६॥

भूल न जाऊँ कहीं उसे।
फिर पाऊँ मैं नहीं उसे॥
अतः कलम कागज़ लाकर।
लिखलो वत्स! उसे सत्वर॥ १०॥

समाधान गुरु लिखवा कर।
आये अपनी कुटिया पर॥
फिर समाधि संलग्न हुए।
ब्रह्मानंद निमग्न हुए॥ ११॥

योगीजन का लक्ष वही।
भक्त जनों का पक्ष वही॥
दुखियों का संरक्ष वही।
सकल विश्व का अक्ष वही॥ १२॥

योगी जिसमें रमते हैं।
भोगी जिसमें भ्रमते हैं॥
रोगी जिस पर जमते हैं।
भुवन चतुर्दश थमते हैं॥ १३॥

एक दिवस यतिवर पथ में।
पत्थर प्रतिमा से रथ में॥
सहसा टकरा जाते हैं।
कुपित भक्त चिल्लाते हैं॥ १४॥

चलता है अंधा होकर।
देता है धक्का पामर॥
इस रथ में जाते ठाकुर।
जिनसे डरते सदा असुर॥ १५॥

यति बोले निर्भय होकर।
बकता क्या अज्ञानी नर॥
जो सब विश्व चलाता है।
उसको क्या बिठलाता है॥ १६॥

इसमें नहीं दोष मेरा।
अंधा है ठाकुर तेरा॥
जो अंधे से टकराता।
मैं चुपचाप चला जाता॥ १७

कैसा मूढ पुजारी है।
उसकी तुच्छ सवारी है॥
जो व्यापक हैं जल थल में।
सत्ता जिसकी पल पल में—१८